षट्खण्डागम और कसायपाहुड

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी

दिगम्बर परम्परा में षट्खण्डागम और कषायप्राभृत की गणना आगम ग्रन्थों में की जाती है। इनमें कर्म-सिद्धान्त विषयक गम्भीर, विशद एवं विस्तृत चर्चा है। षट्खण्डागम में छह खण्ड है, जिनमें से जीवस्थान आदि पाँच खण्डों की रचना आचार्य पुष्पदन्त ने की तथा छठे खण्ड महाबंध की रचना भूतबली ने की। कषायप्राभृत के रचयिता आचार्य गुणधर थे। कषायप्राभृत में मात्र मोहकर्म की चर्चा है। जैनदर्शन के विद्वान् एवं जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय में हिन्दी के सह आचार्य डॉ. पाटनी जी ने षट्खण्डागम और कषायप्राभृत (कसायपाहुड) का इनकी टीकाओं सहित संक्षेप में परिचय कराया है। व्यापक अध्ययन के लिए मूलग्रन्थ एवं टीकाएँ अध्येतव्य हैं। **–सम्पादक**

परम्परा

अविच्छिन्न श्रुतपरम्परा के आकांक्षी दीर्घदर्शी धरसेनाचार्य के शिष्य आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली द्वारा विरचित षट्खण्डागम दिगम्बर जैन साहित्य की अनुपम निधि है। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा अपनी दिव्यध्वनि के माध्यम से प्रतिपादित वस्तुस्वरूप को प्रधान गणधर गौतम ने द्वादशांग वाणी के रूप में ग्रथित कर परवर्ती आचार्यों को श्रुत परम्परा से सुलभ कराया। श्रुत की यह मौखिक परम्परा क्रमशः क्षीण होती चली गई। भगवान के निर्वाण के बाद ६२ वर्ष में तीन अनुबद्ध केवली भगवान हुए, पश्चात् सौ वर्ष के काल में पाँच श्रुत केवली द्वादशांग ज्ञान के धारी हुए। उसके बाद १८३ वर्ष में ११ अंग और १० पूर्व के ज्ञाता आचार्यों की परम्परा चली। अनन्तर २२० वर्षों में केवल पाँच ही आचार्य ऐसे हुए जिन्हें ११ अंगों का ज्ञान प्राप्त था। इसके बाद अंगों का ज्ञान लुप्त होने लगा और केवल चार आचार्य ऐसे हुए जिन्हें एक अंग का और शेष अंगों व पूर्वों के एक देश का ज्ञान प्राप्त था। तब तक श्रुत को लिपिबद्ध करने के प्रयासों का शुभारम्भ नहीं हुआ था।

अवतरण

भगवान की दिव्यध्वनि से निःसृत यह ज्ञान आचार्य परम्परा से क्रमशः हीन होता हुआ आचार्य धरसेन तक आया। वे अत्यन्त कुशल निमित्तज्ञानी थे। अपने निमित्तज्ञान से वे यह जान रहे थे कि महाकर्मप्रकृति प्राभृत के ज्ञाता वे अन्तिम आचार्य हैं। उसके बाद मौखिक/श्रुत परम्परा के बल पर आगम ज्ञान की इस धारा को बढ़ाना सम्भव नहीं रहेगा। अतः उन्हें इसकी सुरक्षा की चिन्ता हुई। अपनी चिन्ता से मुक्त होने के लिए उन्होंने 'गिरनार' सिद्ध क्षेत्र को अपनी साधना स्थली बनाया। अपने संघस्थ शिष्यों में उन्हें कोई ऐसा समर्थ साधक नहीं दिखा जो उनके आगम ज्ञान को ग्रहण कर लिपिबद्ध कर सके, अतः महिमानगरी में सम्पन्न होने वाले 'मुनि सम्मेलन' को उन्होंने संदेश भेजकर अपनी चिन्ता से अवगत कराया और दो योग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्थ साधक भिजवाने का अपना अभिप्राय प्रकट किया। मुनि सम्मेलन में इस महान् आचार्य के अभिप्राय को पूर्ण सम्मान दिया गया और तत्रस्थित साधुओं में से विषयाशानिवृत्त और ज्ञानध्यान में अनुरक्त दो समर्थ, दृढ़ श्रद्धानी साधुओं–पुष्पदन्त और भूतबली को गिरनार की ओर विहार करवाया।

जब मुनि पुष्पदन्त और भूतबली गिरनार पहुंचने वाले थे उसकी पूर्व रात्रि में आचार्य धरसेन स्वामी ने देखा कि दो शुक्ल वर्ण के वृषभ आ रहे हैं। स्वप्न देखते ही उनके मुंह से निकल पड़ा– 'जयउ सुददेवता' श्रुतदेवता जयवन्त रहे। दूसरे दिन दोनों साधु आचार्य चरणों में उपस्थित हो गये। भक्तिपूर्वक आचार्यवन्दना करके उन्होंने अपने आने का प्रयोजन बताया। परीक्षाप्रधानी आचार्य ने दोनों मुनियों को एक–एक मंत्र देकर उसे सिद्ध करने का आदेश दिया। योग्य मुनियों ने मंत्र सिद्ध किया, परन्तु मंत्रों की वशवर्ती देवियाँ जब साधकों के सामने आज्ञा मांगने प्रगट हुई तो वे सुन्दर नहीं थीं– एक के दांत बढ़े हुए थे, दूसरी एकाक्षी थी। समर्थ साधकों ने तुरन्त भांप लिया कि उनके मंत्र अधिकाक्षर और न्यूनाक्षर दोषग्रस्त थे। उन्होंने अपने मन्त्रों को शुद्ध किया और पुनः साधना-संलग्न हुए तब दोनों के सामने सुदर्शन देवियां प्रकट हुई। आचार्य धरसेन ने दोनों की भक्ति और निष्ठा को जानकर उसी दिन से उन्हें महाकर्मप्रकृति प्राभृत रूप आगम ज्ञान प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों शिष्यों ने विनीत भाव से उस अनमोल धरोहर को ग्रहण किया और अपनी धारणा में उसका संचय किया। आषाढ़ शुक्ला एकादशी के पुनीत दिवस पर ज्ञान दान का यह महान् अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। वर्षायोग निकट था। प्रातः दूसरे ही दिन आचार्य धरसेन ने मुनि पुष्पदन्त और भूतबली को विहार करने का आदेश दे दिया। दोनों मुनि वहां से विहार कर नौ दिनों के बाद अंकलेश्वर पहुंचे। वहां उन्होंने वर्षायोग धारण किया और गुरु से अधीत ज्ञान के आधार पर सूत्र रचना का कार्य प्रारम्भ कर दिया और अनवरत उसी में संलग्न कर उसे पूर्ण किया। पुष्पदन्त और भूतबली द्वारा आगम को लिपिबद्ध करने का यह नूतन प्रयास सबके द्वारा समादृत हुआ। समकालीन और परवर्ती ज्ञानपिपासु आचार्यों ने इन सूत्रों की उपयोगिता और महत्ता को स्वीकार किया।

षट्खण्डानुक्रम

आचार्य पुष्पदन्त द्वारा प्रणीत ग्रन्थ की प्रथम गाथा हमारा 'पंच नमस्कार मंत्र' या 'णमोकार मंत्र' ही है जो दीर्घकाल से प्रत्येक जैन के कण्ठ की शोभा है। इस आगम ग्रन्थ को आज आगमसिद्धान्त, परमागम और षट्खण्डागम आदि नामों से जाना जाता है। संक्षेप में षट्खण्डागम का वर्ण्य विषय इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम खण्ड 'जीवट्ठाण' है। इसके अन्तर्गत आठ अनुयोगद्वार और नौ चूलिकाओं में गुणस्थान और मार्गणाओं का आश्रय लेकर जीव का वर्णन किया गया है। **द्वितीय खण्ड** 'खुद्दाबंध' है। इस क्षुल्लक बन्धखण्ड में ग्यारह प्ररूपणाओं द्वारा कर्मबन्ध करने वाले जीव का वर्णन किया गया है। **तीसरे खण्ड** 'बंधस्वामित्वविषय' में कितनी प्रकृतियों का किस जीव के कहां तक बंध होता है, किसके नहीं होता है, कितनी प्रकृतियों की किस गुणस्थान में व्युच्छित्ति होती है, स्वोदय और परोदय बन्धरूप प्रकृतियां कितनी-कितनी हैं, इत्यादि विषयों का वर्णन है। **चतुर्थ खण्ड** 'वेदनाखण्ड' है। इसके अन्तर्गत कृति और वेदना अनुयोग द्वार हैं। **पाँचवें** 'वर्गणाखण्ड' में बन्धनीय के अन्तर्गत वर्गणा अधिकार के अतिरिक्त स्पर्श, कर्मप्रकृति और बन्धन का पहला भेद बंध, इन अनुयोगद्वारों का वर्णन किया गया है। इन्द्रनन्दी ने श्रुतावतार में कहा है कि भूतबली ने पुष्पदन्त विरचित पाँच खण्डों के सूत्रों सहित, छह हजार सूत्र रचने के पश्चात् महाबंध नामक **छठे खण्ड** की रचना की। इसमें प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बन्ध का विस्तृत वर्णन है।

षट्खण्डागम टीकाग्रन्थ

आगमज्ञान के इस अनुपम भण्डार के लिपिबद्ध होने पर ही आचार्यों का ध्यान इसकी टीका/भाष्य की ओर गया। कर्मप्राभृत (षट्खण्डागम) और कषायप्राभृत—इन दोनों सिद्धान्तों का ज्ञान गुरु-परम्परा से कुन्दकुन्दपुर के पद्मनन्दी मुनि को प्राप्त हुआ और उन्होंने सबसे पहले षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर बारह हजार श्लोक प्रमाण टीकाग्रन्थ लिखा जिसका नाम 'परिकर्म' था। अफसोस, आज यह टीका हमें उपलब्ध नहीं है।

महान् तार्किक **आचार्य समन्तभद्र** ने षट्खण्डागम के पाँच खण्डों पर अड़तालीस हजार श्लोक प्रमाण विशाल टीका की। यह अत्यन्त सरल और मृदुल संस्कृत में लिखी गई थी।

षट्खण्डागम के प्रथम पाँच खण्डों पर और कषायप्राभृत पर **शामकुन्द** द्वारा तीसरी टीका लिखी गई है।

तुम्बुलूर नामक आचार्य की **'चूड़ामणि'** टीका इस आगम ग्रन्थ की चौथी टीका है।

बप्पदेव गुरु के द्वारा इस ग्रन्थ की **'व्याख्या प्रज्ञप्ति'** नामक पाँचवीं टीका हुई।

ये पाँचों टीकाएँ षट्खण्डागम के मूललेखन के काल यानी विक्रम की दूसरी सदी से वीरसेन की धवला टीका के रचनाकाल ईसा की नौवीं शताब्दी तक की हैं। पद्मनन्दी प्रथम शताब्दी में, समन्तभद्र दूसरी शताब्दी में, शामकुन्द तीसरी शताब्दी में, तुम्बुलूर चौथी में और बप्पदेव आठवीं शताब्दी ईसवी में हुए। आचार्य वीरसेन की टीका (धवला) का काल ईसा की नवम शताब्दी का प्रथम चरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्खण्डागम पर सबसे पहले विशाल टीका आचार्य वीरसेन स्वामी की है। इनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने अपने गुरु को 'भट्टारक', 'वादिवृन्दारक मुनि' और 'सिद्धान्तोपनिबन्धकर्ता' कहा है तथा उनकी धवला टीका को 'भुवनव्यापिनी' संज्ञा प्रदान की है। वीरसेनाचार्य ने चित्रकूट पर (चित्तौड़गढ़) में अपने गुरु श्री एलाचार्य के पास रहकर समस्त सिद्धान्त का अध्ययन किया और वहीं टीका का लेखन प्रारम्भ किया। बाद में वाटग्राम पधारे। वहां उन्हें बप्पदेव की टीका देखने को मिली, जिसके आधार पर वहीं उन्होंने पाँच खण्डों पर ७२ हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत और संस्कृत मिश्रित 'धवला' टीका लिखी। षट्खण्डागम का छठा खण्ड महाबन्ध स्वयं आचार्य भूतबली द्वारा विस्तार पूर्वक लिखा गया था। इसकी प्रसिद्धि 'महाधवल' नाम से हुई। धवला टीका की समाप्ति कार्तिक शुक्ला १३ शक संवत् ७३८ तदनुसार दिनांक ८ अक्टूबर सन् ८१६ बुधवार को प्रातः काल हुई। सम्भवतः शुक्ल पक्ष में पूर्ण होने के कारण इस टीका का नाम धवला टीका रखा गया। विशद और स्पष्ट अर्थ में धवल शब्द का प्रयोग होने से भी यह धवला कहलाई। अमोघवर्ष के राज्यकाल में यह टीका रची गई। उसकी एक उपाधि 'अतिशय धवल' भी मिलती है। सम्भव है इसी उपाधि के कारण इस टीका का नाम धवला टीका रखा गया हो।

कषायप्राभृत

आचार्य धरसेन के समकालीन आचार्य गुणधर हुए। उन्होंने कषायप्राभृत— कसायपाहुड की रचना की। यतिवृषभ आचार्य ने उस पर चूर्णिसूत्र लिखे। धवला टीका पूर्ण करने के बाद आचार्य वीरसेन ने कषायप्राभृत की टीका लिखना प्रारम्भ किया। २० हजार श्लोक प्रमाण लिखने के बाद उनका निधन हो गया। तब उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने चालीस हजार श्लोक प्रमाण और लिख कर उस टीका को पूर्ण किया।

कषायप्राभृत सचूर्णिसूत्र की टीका का नाम जयधवला है। साठ हजार श्लोक प्रमाण यह जयधवला टीका उपर्युक्त दोनों आचार्यों द्वारा कुल मिलाकर २१ वर्षों के दीर्घकाल में लिखी गई। जयधवला शक संवत् ७५९ में पूर्ण हुई।

प्रकाशन

षट्खण्डागम के मुद्रण का भी लम्बा इतिहास है। वर्तमान में उपलब्ध 'धवला' के १६ भाग १९३६ ई. से १९५६ ई. तक २० वर्षों की अवधि में छपे है। अब तो इनके संशोधित नवीन संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं।

कषायप्राभृत के १६ खण्ड श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा ने प्रकाशित किये हैं। १६ भागों में कुल ६४१५ पृष्ठों में जयधवला टीका सानुवाद प्रकाशित हुई है। इसमें मात्र मोह का वर्णन है जिसमें दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों गर्भित हैं। शेष सात कर्मों की प्ररूपणा इसमें नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय का जितना सूक्ष्मतम, अचिन्त्य व मौलिक वर्णन इसमें है वैसा अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।

षट्खण्डागम नामक मूलग्रन्थ का **छठा खण्ड** महाबंध है। इसे ही **महाधवल** कहते हैं। यह मूल खण्ड ही ३० हजार श्लोक प्रमाण है अतः इस पर किसी भी आचार्य को टीका लिखने की आवश्यकता अनुभूत नहीं हुई। किसी ने लिखी तो भी वह मूल से भी छोटी ही रही। बप्पदेव ने ८००५ श्लोकों में महाबंध की टीका रची। यही षट्खण्डागम का अंतिम खण्ड महाबन्ध या महाधवल अनुवाद सहित सात भागों में भारतीय ज्ञानपीठ से छप चुका है। पिछले दिनों इन सात भागों का पुनर्मुद्रण हुआ है।

महाधवल टीका में सभी कर्म-प्रकृतियों के बन्ध का सविस्तार सांगोपांग वर्णन है। प्रथम पुस्तक में प्रकृतिबन्ध का वर्णन है। दूसरी और तीसरी पुस्तक में स्थिति बंध वर्णित है। चतुर्थ व पंचम पुस्तक में अनुभाग बन्ध तथा छठी-सातवीं पुस्तक में प्रदेश बंध का वर्णन है।

षट्खण्डागम की प्रसिद्ध टीका **'धवला'** संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में भगवद् वीरसेन स्वामी द्वारा ७२००० श्लोक प्रमाण लिखी गई है। वर्तमान में इसका अनुवाद हिन्दी में ७००० पृष्ठों में १६ भागों/ पुस्तकों में हुआ है। **प्रथम छह भागों में षट्खण्डागम के जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड की टीका है। प्रथम पुस्तक** में गुणस्थानों तथा मार्गणास्थानों का विवरण है। गुणस्थान तथा मार्गणास्थान सम्पूर्ण धवल, जयधवल और महाधवल का हार्द है। **दूसरी पुस्तक** में गुणस्थान, जीव-समास, पर्याप्ति आदि २० प्ररूपणाओं द्वारा जीव की परीक्षा की गई है। **तीसरी पुस्तक** द्रव्यप्रमाणानुगम है जिसमें यह बताया गया है कि ब्रह्माण्ड में सकल जीव कितने हैं। इसमें भिन्न—भिन्न अवस्थाओं, गतियों आदि में भी जीवों की संख्याएँ गणित शैली से सविस्तार तथा सप्रमाण बताई गई हैं। **चौथी पुस्तक** में क्षेत्र स्पर्शन कालानुगम द्वारा बताया गया है कि सकल ब्रह्माण्ड में जीव निवास करते हुए, विहार आदि करते हुए कितना क्षेत्र वर्तमान में तथा अतीत में छूते हैं या छू पाए हैं। गुणस्थानों तथा मार्गणाओं में से प्रत्येक अवस्था वाले जीवों का आश्रय कर यह प्ररूपण किया गया है। कालानुगम में मिथ्यादृष्टि आदि जीवों की कालावधि विस्तार से प्ररूपित की गई है। **पाँचवी पुस्तक** अन्तरभाव अल्पबहुत्वानुगम में बताया है कि— १. विवक्षित गुणस्थान छोड़कर अन्यत्र जाकर पुनः उसी गुणस्थान में जीव कितने समय बाद आ सकता है। २. कर्मों के उपशम, क्षय व क्षयोपशम से होने वाले जो परिणाम हैं, उन्हें भाव कहते हैं। वे भाव मिथ्यादृष्टि आदि में तथा नरकगति आदि में कैसे होते हैं तथा ३. विभिन्न गुणस्थानादिक में जीवों की हीनाधिक संख्या कैसी है? **छठी पुस्तक** चूलिका स्वरूप है। इसमें प्रकृति समुत्कीर्तन, स्थान समुत्कीर्तन, तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्य स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति तथा गति-आगति नामक नौ चूलिकाएँ हैं। इनमें से प्रथम दो चूलिकाओं में कर्मों के भेदों और उनके स्थानों की प्ररूपणा है। सम्यग्दर्शन के सम्मुख जीव किन–किन प्रकृतियों को बांधता है इसके स्पष्टीकरणार्थ ३ दण्डक स्वरूप ३ चूलिकाएँ हैं। कर्मों की जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति को छठी व सातवीं चूलिकाएँ बताती हैं। इस प्रकार इन सात चूलिकाओं में कर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्तिम दो चूलिकाओं में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति तथा जीवों की गति--आगति बताई गई है। इस प्रकार छठी पुस्तक में मुख्यत: कर्मप्रकृतियों का वर्णन है।

सातवीं पुस्तक में षट्खण्डागम के **दूसरे खण्ड क्षुद्रकबन्ध** की टीका है जिसमें संक्षेप में कर्मबन्ध का प्रतिपादन किया गया है।

आठवीं पुस्तक में षट्खण्डागम के **तीसरे खण्ड बन्धस्वामित्व** विषय की टीका पूर्ण हुई है। कौनसा कर्मबन्ध किस गुणस्थान तथा मार्गणा से सम्भव है, यह इसमें वर्णित है। इसी सन्दर्भ में निरन्तरबन्धी, सान्तरबन्धी, ध्रुवबन्धी आदि प्रकृतियों का ख़ुलासा तथा बन्ध के प्रत्ययों का खुलासा है।

नवम भाग में **वेदना खण्ड** संबंधी कृति अनुयोगद्वार की टीका है। वहां आद्य ४४ सूत्रों की टीका में विभिन्न ज्ञानों की विशद प्ररूपणा की है। फिर सूत्र ४५ से अन्त तक कृति अनुयोगद्वार का विभिन्न अधिकारों में प्ररूपण किया गया है। **दसवीं पुस्तक** में षट्खण्डागम के वेदना खण्ड विषयक वेदना-निक्षेप, नयविभाषणता, नामविधान तथा वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वारों का सविस्तार विवेचन है। **ग्यारहवीं पुस्तक** में वेदना क्षेत्रविधान तथा वेदना कालविधान का विभिन्न अनुयोगद्वारों–अधिकारों द्वारा वर्णन करके फिर दो चूलिकाओं द्वारा अकथित अर्थ का प्ररूपण तथा प्ररूपित अर्थ का विशिष्ट खुलासा किया है। **बारहवीं पुस्तक** में वेदना भावविधा आदि १० अनुयोगद्वारों द्वारा गुणश्रेणिनिर्जरा तथा अनुभाग से संबंधित सूक्ष्मतम, विस्तृत तथा अन्यत्र अलभ्य ऐसी प्ररूपणा की गई है। इस तरह वेदना अनुयोगद्वार के १६ अधिकार तीन पुस्तकों १०–११–१२ में सटीक पूर्ण होते हैं।

षट्खण्डागम के **पाँचवें खण्ड** की टीका (वर्गणा खण्ड) तेरहवीं, चौदहवीं पुस्तक में हुई है। **तेरहवीं पुस्तक** में स्पर्श, कर्म व प्रकृति अनुयोगद्वार है। स्पर्श अनुयोगद्वार का १६ अवान्तर अधिकारों द्वारा विवेचन करके फिर कर्म अनुयोगद्वार का अकल्प्य १६ अनुयोगद्वारों द्वारा वर्णन करके तत्पश्चात् अन्तिम प्रकृति अनुयोगद्वार में ८ कर्मों का सांगोपांग वर्णन है। **चौदहवीं पुस्तक** में बन्धन अनुयोगद्वार द्वारा बन्ध, बन्धक, बन्धनीय (जिसमें २३ वर्गणाओं का विवेचन है, पाँच शरीर की प्ररूपणा भी है तथा बन्ध विधान का मात्र नाम निर्देश है।) द्वारा प्ररूपणा की है। अन्तिम दो पुस्तकों–**पन्द्रहवीं**, **सोलहवीं** द्वारा शब्दब्रह्म, लोकविज्ञ, मुनिवृन्दारक, भगवद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेनस्वामी ने सत्कर्मान्तर्गत शेष १८ अनुयोगद्वारों (निबन्धन, प्रक्रम आदि) की विस्तृत विवेचना की है।

इस तरह १६ पुस्तकों में धवला टीका सानुवाद पूरी होती है। धवला की १६ पुस्तकें, जयधवला की १६ पुस्तकें और महाधवल की ७ पुस्तकें– कुल मिलाकर ३९ पुस्तकें तथा इनके कुल पृष्ठ १६३४१ प्रामाणिक जिनागम हैं। केवली की वाणी द्वारा निबद्ध द्वादशांग से इनका सीधा संबंध होने से षट्खण्डागम अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थराज है, यह निर्विवाद सिद्ध है।

(**स्रोत**–प्रस्तुत संक्षिप्त-परिचय श्री नीरज जैन की पुस्तक 'षट्खण्डागम की अवतरण कथा' तथा पं. जवाहरलाल शास्त्री की पुस्तक 'धवल जयधवलसार' से संकलित किया गया है।)

–सहआचार्य, हिन्दी-विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org